Vindhyan Bloom

ISSN-2319-8478
Vol-15 Issue-3, June 2026

A Referred Peer Review Research Journal

Vindhyan Bloom

ISSN-2319-8478 Vol-15 Issue-3, June 2026

Manuscript Information	*Research Paper*	*Paper No. VBRP-38*

प्राचीन भारतीय वाङ्मय में पारिस्थितिक चेतना एवं पर्यावरण-सम्वर्धन का वैज्ञानिक स्वरूप

सुश्री सलोनी पंवार, सहायक प्राध्यापक, संस्कृत, पी.एम.सी.ओ.ई. शा. माधाव महाविद्यालय, उज्जैन

डॉ. आर. शास्त्री मुसलगाँवकर, प्राध्यापक, संस्कृत, ज्योतिर्विज्ञान एवं वेदअधययनशाला, सम्राट् विक्रमादित्य विश्वविद्यालय, उज्जैन

शोध-सार: प्रकृति एवं पर्यावरण के साथ मानव का तादात्म्य अनादि काल से अनवरत रूपेण प्रवहमान है । प्राचीन भारतीय वाङ्मय–वेद, उपनिषद्, पुराण, आर्ष-महाकाव्य - रामायण एवं महाभारत , तथा स्मृतियाँ – पर्यावरण संरक्षण, पारिस्थितिक संतुलन एवं ऋतु चक्र के प्रति अपनी गहन संवेदनशीलता को उद्घाटित करता है । यह प्राचीन युग के मनीषियों की प्रगाढ़ पर्यावरणीय प्रज्ञा का परिचायक है । प्रस्तुत शोध-पत्र में प्राचीन भारतीय वाङ्मय में सन्निहित पारिस्थितिकी चेतना, जल संरक्षण, वनस्पति सम्वर्धन एवं जीव-दया के सिद्धान्तों का विश्लेषणात्मक एवं अनुसंधानात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है, जो वर्तमान युग की पर्यावरणीय विभीषिकाओं के समाधान हेतु अत्यन्त उपादेय एवं मार्गदर्शक सिद्ध हो सकता है ।

सार शब्द–भारतीय ज्ञान परम्परा, पारिस्थितिकी, पर्यावरणसम्वर्धन, वेद, ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, ब्राह्मण ग्रंथ, शतपथ, ऐतरेय,उपनिषद्, पुराण, धर्मशास्त्र, स्मृति, श्रीमद्भगवद्गीता, विज्ञान, महाकाव्य, ब्रह्माण्ड ।

प्रस्तावना

सांस्कृतिक, दार्शनिक एवं आध्यात्मिक दृष्टि से सम्पन्न भारतभूमि के प्राचीन मनीषियों ने आज से सहस्रों वर्ष पूर्व ही उस सत्य को आत्मसात कर लिया था, जिसे आधुनिक विज्ञान 'पारिस्थितिकी' कहता है। यदि व्युत्पत्तिपरक दृष्टि से विचार करें, तो 'पर्यावरण' शब्द 'परि' उपसर्गपूर्वक 'वृ' धातु अर्थात् 'आवृत करना' से निष्पन्न होता है। इसका अर्थ है— जो सम्पूर्ण भूमण्डल को चारों ओर से आवृत किए हुए है, वही पर्यावरण है।

"परिसमन्ताद् आवृणोति इति पर्यावरणम्।"

वर्तमान 21वीं सदी में यान्त्रिक जीवनशैली, अनियन्त्रित औद्योगिकीकरण और प्रकृति के अत्यधिक दोहन की उपभोक्तावादी विचारधारा ने सम्पूर्ण मानवजाति के अस्तित्व को एक गहरे संकट में डाल दिया है। वैश्विक तापन, ऋतु-परिवर्तन और प्रदूषण जैसी विभीषिकाएँ वर्तमान में हमारे समक्ष हैं। इसके विपरीत, प्राचीन भारतीय ऋषियों ने तत्कालीन समय में कोई प्रत्यक्ष पर्यावरण-संकट न होने पर भी अपनी त्रिकालदर्शी दूरदर्शिता का परिचय दिया है। उन्होंने प्रकृति के विविध उपादानों—नदी, पर्वत, वृक्ष, वायु और पशु-पक्षियों—को मात्र भौतिक वस्तु न मानकर उन्हें धर्म, अध्यात्म और दैवीय स्वरूप से सम्बद्ध किया था, ताकि लोकमानस में प्रकृति के प्रति भय नहीं,

ISSN-2319-8478
Vol-15 Issue-3, June 2026

अपितु आत्मीयता, आदर और संरक्षण का भाव सदैव बना रहे।

वैदिक वाङ्मय में पर्यावरणीय चेतना -

वैदिक संहिताओं में प्रकृति के प्रत्येक उपादान को दैवीय शक्ति से अनुप्राणित मानकर वंदना की गई है । वेदों की दृष्टि में यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड एक अन्योन्याश्रित इकाई है, जहाँ एक का भी संतुलन अव्यवस्थित होने पर सम्पूर्ण सृष्टि प्रभावित होती है ।

ऋग्वेद - ऋग्वेद सम्पूर्ण विश्व का और भारतीय वाङ्मय का प्राचीनतम ग्रन्थ है । इसमें सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को एक परिवार के रूप में देखा गया है, जिसमें पृथ्वी को माता और आकाश को पिता का स्थान दिया गया है -

"द्यौष्पिता पृथिवी माता"।

ऋग्वेद में वनस्पतियों और औषधियों के गुणों का विस्तृत विवेचन दृष्टिगोचर होता है । ऋग्वेद के ऋषियों ने वनस्पतियों को मनुष्य का 'रक्षा कवच' माना है क्योंकि वे जानते थे कि वृक्ष वातावरण से विषैली वायु का शमन करते हैं और जीवनदायिनी ऊर्जा का संचार करते हैं । इसी कारण वेदों में हरे वृक्षों के कर्तन का विशेष रूप से निषेध किया गया है । यथा–

"ओषधयः सोमराज्ञीर्विद्वांसः प्रसरन्ति ताः।
आ नो मुञ्चन्त्व् अंहसः।।" (ऋग्वेद १०/९७/११)

अर्थात्, सोम को राजा मानने वाली औषधियाँ हमें पाप और संतापों से मुक्त करती हैं । वृक्षों को अनाधिकृत रूप से काटना अथवा नष्ट करना महापाप माना गया है तथा उनके संरक्षण पर विशेष बल दिया गया है ।

यजुर्वेद और ब्रह्माण्डीय शान्ति - यजुर्वेद का शान्ति मन्त्र सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में शान्ति, व्यवस्था और पारिस्थितिक संतुलन की उद्घोषणा करता है ।

"द्यौः शांतिरन्तरिक्षं शांतिः पृथ्वी शांतिरापः
शांतिरोषधयः शांतिः।
वनस्पतयः शांतिर्विश्वे देवाः शांतिर्ब्रह्म शांतिः सर्वं शांतिः शांतिरेव शांतिः सा मा शांतिरेधि"॥ (यजुर्वेद ३६/१७)

इसका तात्पर्य यह है कि अंतरिक्ष, पृथ्वी, जल, वनस्पतियाँ और देवगण–सभी परस्पर संतुलित रहने चाहिए । किसी भी एक उपादान में वैषम्य सम्पूर्ण ब्रह्माण्डीय व्यवस्था को असंतुलित कर सकता है ।

अथर्ववेद एवं पृथ्वी सूक्त –पारिस्थितिकी और पर्यावरण चेतना की दृष्टि से अथर्ववेद का बारहवां काण्ड (प्रथम सूक्त) , जिसे 'भूमि सूक्त' या 'पृथ्वी सूक्त' कहा जाता है, मानव इतिहास का सर्वप्रथम और गूढ़ प्रमाण है । यह सूक्त वर्तमान के 'मदर अर्थ' की संकल्पना को सहस्रों वर्ष पूर्व ही प्रतिष्ठित कर चुका था । इसमें पृथ्वी को माता के रूप में स्वीकार करते हुए उद्घोष किया गया है–

"माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः।" (अथर्ववेद १२/१/१२)

अर्थात्, यह भूमि मेरी माता है और मैं इस पृथ्वी का पुत्र हूँ । जब मनुष्य किसी को अपनी माता स्वीकार कर लेता है, तो वह उसका शोषण नहीं कर सकता, केवल पोषण कर सकता है । ऋषि पृथ्वी को 'विश्वंभरा' अर्थात् सबका पेट भरने वाली और 'हिरण्यवक्षा' अर्थात् अपने भीतर रत्नों और ऊर्जा को समेटे हुए स्वर्णिम वक्ष वाली कहकर उसकी स्तुति करते हैं । इस सूक्त में भूमि की पवित्रता, जल-स्रोतों की स्वच्छता और वायु की निर्मलता को अक्षुण्ण बनाए रखने के लिए मानव के नैतिक एवं सामाजिक दायित्वों का अत्यन्त सूक्ष्मता से निरूपण किया गया है ।

वर्तमान का आधुनिक विज्ञान जिस सतत् विकास की बात करता है, उसकी मूल अवधारणा अथर्ववेद के इस मंत्र में सन्निहित है -

"यत् ते भूमे विखनसि क्षिप्रं तद् अपि रोहतु।
मा ते मर्म विमृग्वरि मा ते हृदयमर्पिपम्॥"

अर्थात् -' हे मातृभूमि! अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए मैं तुझसे जो कुछ भी खोदकर निकालूँ

ISSN-2319-8478
Vol-15 Issue-3, June 2026

जैसे खनिज, कृषि हेतु मिट्टी आदि, वह पुनः उतनी ही शीघ्रता से अंकुरित और पूरित हो जाए । मैं कभी भी अज्ञानता या लोभवश तेरे मर्म स्थल पर आघात न करूँ और न ही तेरे हृदय को पीड़ा पहुँचाऊँ' । यह मंत्र संसाधनों के विवेकपूर्ण उपयोग की पराकाष्ठा है ।

ब्राह्मण ग्रंथों में याज्ञिक पर्यावरण-शुद्धि

ब्राह्मण ग्रंथों ने 'यज्ञ' की प्रक्रिया को पर्यावरण-शोधन की एक वैज्ञानिक पद्धति के रूप में प्रस्तुत किया है।

• ऐतरेय ब्राह्मण — इस ग्रंथ के अनुसार, वायु ही इस ब्रह्मांड में यज्ञ का वास्तविक वाहक है तथा अग्नि देवताओं का मुख है। जब यज्ञ की पवित्र अग्नि में विशेष प्रकार की समिधाएँ—जैसे आम, पीपल एवं गूलर की लकड़ियाँ—तथा दिव्य औषधियाँ, यथा गुग्गुल, कपूर, जटामांसी आदि, अर्पित की जाती हैं, तो वे वाष्पीकृत होकर वायुमण्डल में फैल जाती हैं। यह प्रक्रिया वातावरण में व्याप्त हानिकारक सूक्ष्मजीवाणुओं, दुर्गन्ध तथा विभिन्न प्रदूषकों के शमन एवं शुद्धीकरण में सहायक मानी गई है।

• शतपथ ब्राह्मण — इसमें स्पष्ट उल्लेख प्राप्त होता है कि यज्ञ से उत्पन्न होने वाला धूम्र वायुमण्डल में बादलों के निर्माण में सहायक होता है, जिससे शुद्ध एवं अमृततुल्य जल की वर्षा होती है। यह वर्षा औषधियों तथा पादपों को नवजीवन प्रदान करती है, जिसके परिणामस्वरूप सम्पूर्ण खाद्य-शृंखला की शुद्धता एवं पोषण-संतुलन बना रहता है।

उपनिषद् और ब्रह्माण्डीय व्यवस्था -

उपनिषद् भारतीय दर्शन के शिखर ग्रंथ हैं । इनमें सृष्टि की उत्पत्ति 'पंचमहाभूतों' यथा पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि, आकाश से मानी गई है । इन पाँच तत्वों का सामंजस्य ही ब्रह्माण्डीय व्यवस्था का मूलाधार है ।

तैत्तिरीय उपनिषद् में इन तत्वों के क्रमिक विकास का वैज्ञानिक विश्लेषण परिलक्षित होता है–

"तस्माद्वा एतस्मादाकाशः संभूतः। आकाशाद्वायुः। वायोरग्निः। अग्नेरापः। अद्भ्यः पृथिवी। पृथिव्या ओषधयः। ओषधीभ्योऽन्नम्। अन्नात्पुरुषः।।"

(तैत्तिरीय उपनिषद, ब्रह्मानंद वल्ली १/१)

अर्थात्, आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल, जल से पृथ्वी, पृथ्वी से औषधियाँ, औषधियों से अन्न और अन्न से पुरुष (मानव) की उत्पत्ति हुई है । उपनिषदों का शाश्वत संदेश है कि मानव-शरीर और सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड इन्हीं पंचमहाभूतों से निर्मित हैं । अतः बाह्य पर्यावरण में होने वाला कोई भी असंतुलन मानव स्वास्थ्य और चेतना को प्रभावित करता है । यह अनुक्रम प्रदर्शित करता है कि मानव या कोई भी जीव इस पारिस्थितिक तंत्र का अंतिम उत्पाद है और वह अपने अस्तित्व के लिए पिछले सभी तत्वों - पृथ्वी, जल, वायु, वनस्पति पर पूर्ण रूपेण निर्भर है । बृहदारण्यक उपनिषद् में ऋषि मनुष्य और एक वृक्ष के बीच साक्षात् समानता स्थापित करते हुए कहते हैं कि जैसे वृक्ष की त्वचा उसकी छाल है, वैसे ही मनुष्य की त्वचा उसका चर्म है । वृक्ष को काटना साक्षात् पुरुष को आहत करने के समान है ।

आर्षमहाकाव्यकालीन पर्यावरणीय दृष्टिकोण

वाल्मीकि रामायण - रामायण में महर्षि वाल्मीकि ने रामराज्य के माध्यम से एक आदर्श पारिस्थितिक तंत्र का चित्रण किया है, जहाँ मनुष्यों और वन्यजीवों के बीच कोई संघर्ष नहीं था । भगवान राम का वन गमन वास्तव में प्रकृति के साथ उनके प्रेम को दर्शाता है । रामायण में वनों, नदियों, पर्वतों और विभिन्न जीव-जंतुओं का अत्यंत सजीव एवं काव्यात्मक चित्रण प्राप्त होता है । भगवान श्रीराम के चतुर्दश-वर्षीय वनवास के दौरान

ISSN-2319-8478
Vol-15 Issue-3, June 2026

दण्डकारण्य और चित्रकूट की प्राकृतिक छटा का वर्णन यह स्पष्ट करता है कि उस काल में वनों का जीवन कितना व्यवस्थित, समृद्ध और संरक्षित था । अरण्यकाण्ड में ऋषियों के आश्रमों की व्यवस्था प्रकृति के साथ पूर्ण तादात्म्य को प्रदर्शित करती है, जहाँ हिंसक जीव भी अपनी सहज आक्रामकता को त्यागकर शान्तिपूर्वक निवास करते थे ।

रामायण में वायु को जगत् का साक्षात् प्राण और सूर्य को संपूर्ण ऊर्जा का अक्षय स्रोत माना गया है । रामकथा में वानर, भालू -ऋक्ष , और पक्षी - जटायु-सम्पाती जैसे वन्यजीवों का मनुष्यों के साथ मिलकर काम करना यह सिद्ध करता है कि हमारी संस्कृति में जैव-विविधता का कितना सम्मान था ।

महाभारत - महर्षि वेदव्यास रचित महाभारत के शांतिपर्व और अनुशासन पर्व में वनों की रक्षा, वृक्षारोपण और जल-प्रबंधन को राजा का सर्वोच्च राजधर्म बताया गया है। यथा–

"न पादपाः छेदनीयाः शुभाः फलवतोऽपि वा।"

(महाभारत, अनुशासन पर्व १४३/३२)

अर्थात्, सुंदर और फल प्रदान करने वाले वृक्षों को कभी भी नहीं काटना चाहिए । जीव-जंतुओं के संरक्षण और अहिंसा के सिद्धांतों को पारिस्थितिकी का प्राण माना गया है । 'खांडव वन दहन' की कथा प्रतीकात्मक रूप से यह चेतावनी देती है कि प्रकृति के अन्धाधुंध विनाश का परिणाम अंततः सर्वनाशी होता है ।

पुराणों में पादप एवं जलाशय सम्वर्धन

विभिन्न पुराणों जैसे मत्स्य पुराण, वराह पुराण, अग्नि पुराण, और विष्णु पुराण में वृक्षारोपण को एक अत्यन्त पुण्यदायी, लोकोपकारक एवं आध्यात्मिक कार्य के रूप में माना गया है ।

वृक्षारोपण -पुराणों में वट (बरगद), अश्वत्थ (पीपल), निम्ब (नीम), आम्र (आम) और तुलसी जैसे पादपों को रोपने और उनकी नित्य पूजा करने का विधान है । पीपल और वटवृक्ष को साक्षात् देवताओं का अधिष्ठान माना गया है, जिससे पर्यावरण की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण इन दीर्घायु वृक्षों का स्वतः संरक्षण सुनिश्चित होता था ।

ऋग्वेद के प्राचीन 'अरण्यानी सूक्त' से लेकर संपूर्ण पौराणिक वाङ्मय तक वनों को मात्र लकड़ी का स्रोत न मानते हुए 'तीर्थ' और 'पुण्यायतन' का स्थान दिया गया है ।वायु पुराण एवं स्कन्द पुराण में तात्कालिक समय के विशाल वनों जैसे– देवदारुवन, दण्डकवन, खाण्डववन और नैमिषारण्य का विस्तृत धार्मिक और पारिस्थितिक महत्व वर्णित है । पुराणों में स्पष्ट रूप से निर्देश है कि एक वृक्ष का रोपन करना दस पुत्रों को पालने के समान पुण्यकारी है -

"दशकूपसमा वापी दशतड़ागसमोह्रदः।
दशह्रदसमः पुत्रो दशपुत्रसमो द्रुमः॥"

जलाशय-संरक्षण - मत्स्य पुराण आदि पुराणों में जलाशयों, कूपों (कुओं), वापी (बावड़ियों) और तड़ाग (तालाबों) के निर्माण को महादान की श्रेणी में रखा गया है । जल को जीवन का प्राणतत्त्व मानते हुए उसे प्रदूषित करने का पूर्ण निषेध किया गया है । पुराणों में जल को समस्त सृष्टि का प्रथम तत्व माना गया है यथा- 'अप एव ससर्जादौ' । जल की शुद्धता बनाए रखने के लिए मार्कण्डेय पुराण और पद्म पुराण में अत्यंत कड़े नैतिक नियम दिए गए हैं -

"नाप्सु मूत्रं पुरीषं वा निष्ठीवं न समाचरेत्।
न च स्नायात् नग्नः कश्चित् न प्रदूषयित् जलम्॥"

अर्थात् जल के स्रोतों में कभी भी मल, मूत्र या कोई भी अपशिष्ट पदार्थ न फेंकें। पुराणों में जल संरक्षण के महत्व को बढ़ाते हुए यहाँ तक कहा गया है कि जो व्यक्ति एक जलाशय का निर्माण करवाता है, उसे करोड़ों अश्वमेघ यज्ञों के समतुल्य पुण्य प्राप्त होता है ।

श्रीमद्भगवद्गीता -

ISSN-2319-8478
Vol-15 Issue-3, June 2026

श्रीमद्भगवद्गीता में योगेश्वर श्रीकृष्ण ने प्रकृति को अपनी 'अपरा और परा' प्रकृति के रूप में परिभाषित करते हुए स्वयं को इसका मूल कारण बताया है । गीता के तीसरे अध्याय में जल चक्र और पारिस्थितिक संतुलन का अत्यंत सुंदर वर्णन मिलता है -

"अन्नाद्भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसंभवः।
यज्ञाद्भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्मसमुद्भवः॥"

अर्थात् संपूर्ण प्राणी अन्न से उत्पन्न होते हैं, अन्न की उत्पत्ति वर्षा से होती है, वर्षा यज्ञ से होती है और यज्ञ नियत कर्मों से संपन्न होता है। यहाँ 'यज्ञ' का व्यापक अर्थ प्रकृति के साथ संतुलन बनाए रखने वाले मानवीय कर्तव्यों से है । इसके अतिरिक्त, श्रीकृष्ण विभूतियोग में कहते हैं– "अश्वत्थः सर्ववृक्षाणाम्" अर्थात् सब वृक्षों में मैं पीपल का वृक्ष हूँ । पीपल चौबीसों घंटे प्राणवायु ऑक्सीजन देने वाला वृक्ष है, उसे पूजनीय बनाकर कृष्ण ने पादप जगत् को परम पूजनीय और वंदनीय रूप प्रदान किया ताकि मनुष्य उसकी रक्षा कर सकें ।

स्मृतियाँ एवं पर्यावरणीय आचारसंहिता

मनुस्मृति और याज्ञवल्क्य स्मृति जैसी स्मृतियों में पर्यावरण को दूषित करने वाले कृत्यों के लिए कठोर प्रायश्चित और दंड का प्रावधान समादृत है ।

वनस्पति हिंसा का निषेध -

"फलदानां तु वृक्षाणां छेदने भेदनं तथा।
कार्यो द्वादशको दण्डो गोवधस्य समं तु तत्।।"
(मनुस्मृति ११/६५)

अर्थात्, फलदार वृक्षों को काटना या उन्हें क्षति पहुँचाना गोवध (गौ हत्या) के समान पातक माना गया है और इसके लिए आर्थिक एवं शारीरिक दंड का विधान किया गया है। यह व्यवस्था समाज में पर्यावरणीय नैतिकता को सुदृढ़ता प्रदान करती है।

जीव-संरक्षण - पशु-पक्षियों और जलचरों के प्रति क्रूरता का सर्वथा निषेध किया गया है। समाज की आचार-संहिता में प्रकृति के अनियंत्रित दोहन पर नैतिक अंकुश लगाया गया है, ताकि भावी पीढ़ियों के लिए प्राकृतिक संसाधन सुरक्षित एवं संरक्षित रह सकें।

आधुनिक युग में उपादेयता

वर्तमान समय में संपूर्ण विश्व वैश्विक तापन, जलवायु परिवर्तन, प्रदूषण और जैव-विविधता के ह्रासजैसी गंभीर विभीषिकाओं से आक्रांत है। ऐसे दुरूह समय में, पाश्चात्य पर्यावरण दृष्टिकोण के स्थान पर प्राचीन भारतीयवाङ्मय में निहित समग्रतावादी दृष्टिकोण अत्यंत समीचीन एवं प्रासङ्गिक प्रतीत होता है।

भारतीय मनीषा का यह उद्घोष कि–

"तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः" (ईशावास्योपनिषद १)

अर्थात, प्रकृति के संसाधनों का विवेकपूर्ण उपभोग करो, उस पर अपना आधिपत्य या स्वामित्व मत समझो। यही शाश्वत संदेश 'सतत् विकास' का वास्तविक आधार है।

उपसंहार

अतः यह पूर्णतः स्पष्ट है कि प्राचीन भारतीय वाङ्मय में मनुष्य को प्रकृति का निरङ्कुश स्वामी नहीं माना गया है अपितु प्रकृति को तो मनुष्य का एक अभिन्न अङ्ग और संरक्षक माना गया है। वेद, उपनिषद्, पुराण और स्मृतियाँ पर्यावरण के प्रति अत्यंत व्यावहारिक एवं उदात्त दृष्टिकोण प्रस्तुत करते हैं। पारिस्थितिक असंतुलन की वर्तमान वैश्विक समस्या के समूल निराकरण हेतु प्राचीन भारतीय पारिस्थितिकी-चेतना एवं जीवन-मूल्यों का अनुशीलन और अङ्गीकरण अपरिहार्य है।

वर्तमान में जब सम्पूर्ण विश्व जलवायु परिवर्तन, ओजोन परत के क्षरण, जल संकट और प्राकृतिक आपदाओं से त्रस्त है, तब ऐसी स्थिति में, वैश्विक पर्यावरण संकट के समाधान हेतु हमें पुनः उसी वैदिक और पौराणिक काल के प्राकृतिक नियमों,

ISSN-2319-8478
Vol-15 Issue-3, June 2026

'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना और सनातन मूल्यों की ओर लौटना होगा । जब तक हम पृथ्वी को अपनी माता और स्वयं को उसके पुत्र के रूप में स्वीकार नहीं करेंगे, तब तक पर्यावरण का वास्तविक संरक्षण असम्भव है । भावी पीढ़ी को एक स्वच्छ, हरा-भरा और संतुलित पर्यावरण सौंपना ही वर्तमान समय में मनुष्य का सबसे बड़ा धर्म और परम मानवीय कर्त्तव्य है ।

संदर्भग्रन्थसूची -

- **अथर्ववेद संहिता सायणभाष्य सहित, चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी, 1972**
- **ईशावास्योपनिषद् ईशादि नौ उपनिषद् (शाङ्करभाष्यार्थ), गीताप्रेस गोरखपुर, बारहवाँ संस्करण, विक्रमसम्वत् - 2072**
- **ऋग्वेद संहिता - सायणभाष्य सहित, चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी, 1968**
- **कौटिलीय अर्थशास्त्रम्, वाचस्पति गैरोला, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 2015**
- **गीतातत्त्वमीमांसा - डॉ. केशव राव मुसलगाँवकर, चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, 2023**
- **नारदपुराणम् - महर्षि व्यासकृत, काशीराज ट्रस्ट, वाराणसी, 1940**
- **पुराण-विमर्श - आचार्य बलदेव उपाध्याय, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 2018**
- **भारत वैभव - ओ3म् प्रकाश पाण्डेय, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास नई दिल्ली,2021**
- **मनुस्मृतिः, श्रीकुल्लूकभट्टप्रणतिया मन्वर्थमुक्तावल्या क्षेपकपरिशिष्टश्लोकैरकारादिकोशेन च सहिता, चौखम्बा संस्कृत सीरिज़ आफिस, बनारस सिटी** , 1992
- **महाभारत - महर्षि वेदव्यास, गीताप्रेस, गोरखपुर, 2007**
- **यजुर्वेद संहिता उव्वट- महीधरभाष्य सहित, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, 2005**
- **याज्ञवल्क्यस्मृतिः - महर्षियाज्ञवल्क्यकृत, श्री विज्ञानेश्वरकृत 'मिताक्षरा' संस्कृत टीका एवं हिन्दी व्याख्या सहित, व्या. डॉ. गङ्गासागर राय, चौखम्बा संस्कृत प्रकाशन, वाराणसी, 2007**
- **वाल्मीकि रामायण , महर्षि वाल्मीकि, गीताप्रेस, गोरखपुर, 2000**
- Classical Sanskrit Literature, A.B. Keith (Y.M.C.A. Publishing House, Calcutta), 1947